भारत के स्वतंत्रता संघर्ष में जनजातीय विद्रोह : एक अध्ययन

सरोज शालिनी*

भारत के विभिन्न भागों के बहुत बड़े क्षेत्रों में रहने वाले आदिवासियों ने 19वीं सदी में कई छापामार लड़ाइयाँ लड़ी। वे आपस में संगठित हुए और उन्होंने अत्यंत जुझारू संघर्ष किया और असीम शौर्य व बलिदान का परिचय दिया। दूसरी तरफ, अंग्रेजों ने इनका दमन करने में क्रूरता की सारी सीमाएँ तोड़ दी और उन पर पाशविक अत्याचार किए।

भ्रष्टाचार और अत्याचार के हथियारों से लैस औपनिवेशिक शासन ने जब आदिवासियों के इलाकों में घुसपैठ की, तो उनमें घोर असंतोष पैदा होना स्वाभाविक ही था। आमतौर पर आदिवासी शेष समाज से अपने को अलग–अलग रखते थे, लेकिन ब्रिटिश राज उनको पूरी तरह औपनिवेशिक घेरे के भीतर खींच लाया। राज ने आदिवासी कबीलों के सरदारों को जमींदारों का दरजा दिया और लगान की नई प्रणाली लागू की। आदिवासियों द्वारा उत्पादित अन्य वस्तुओं पर नए तरह के कर भी लगाए गए। यही नहीं, आदिवासी इलाकों में ईसाई मिशनरियों की घुसपैठ को भी राज ने बढ़ावा दिया। इसके साथ ही उनके बीच महाजनों, व्यापारियों और लगान वसूलने वालों के ऐसे वर्ग को भी इन पर लादा गया, जो बिचौलिए का काम करता था। आदिवासियों को औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था और शोषण के भंवर में खींच लाने के काम में औपनिवेशिक शासकों ने इन बिचौलियों का जमकर इस्तेमाल किया। ये बाहरी बिचौलिए धीरे–धीरे आदिवासियों की जमीन पर कब्जा जमाते गए और उन्होंने आदिवासियों को कर्ज को जटिल जाल में उलझा–फंसा दिया।

आदिवासी इलाकों में बाहरी लोगों और औपनिवेशिक राज की घुसपैठ ने उनकी पूरी सामाजिक व्यवस्था को ही उलट–पलट दिया। उनकी जमीन उनके हाथ से निकलती गई और वे धीरे–धीरे किसान से खेत मजदूर होते चले गए। जंगलों से उनके गहरे रिश्ते को भी औपनिवेशिक हमले ने तोड़ दिया। इसके पहले वे भोजन, ईंधन और पशुओं का चारा आदि जंगलों से जुटाते थे, जहाँ उनका जीवन पूरी तरह स्वच्छंद था। खेती के उनके अपने तरीके थे। वे जगह बदल–बदल कर 'झुम' और 'पडु' विधियों से खेती करते थे–यानी जब उन्हें लगता था कि उनके खेत अब उपजाऊ नहीं रह गए हैं, तो वे जंगल साफ कर खेती के लिए नई जमीन तैयार कर लेते थे। लेकिन औपनिवेशिक राज ने सब–कुछ बदल दिया और जंगली भूमि, वन–उत्पादों व गांवों की जमीन के इस्तेमाल पर भी तरह–तरह के अंकुश लगा दिए। जगह बदलकर की जाने वाली खेती पर तो पूरी तरह रोक लगा दी गई। पुलिस और अन्य छोटे–मोटे अधिकारियों द्वारा किए जाने वाले अत्याचारी, शोषण और जबरन उगाही ने आदिवासियों का जीना दूभर कर दिया। लगान वसूलने वाले लोग और महाजनों, जैसे सरकारी बिचौलिए और दलाल इन आदिवासियों का शोषण तो करते ही थे, उनसे जबरन बेगार भी कराते थे।

इसके फलस्वरूप आदिवासियों में असंतोष गहराता गया और उनके हर विद्रोह का एकमात्र कारण यही था। आदिवासियों ने काफी बड़े पैमाने पर संघर्ष किया, जिनमें हजारों आदिवासी एकजुट होकर लड़े। कई बार तो पूरा कबीला और आसपास के सभी गांवों के आदिवासी संगठित हुए। कुछ मौके पर तो पूरा–का पूरा क्षेत्र ही अंग्रेजों के खिलाफ हथियार उठाकर खड़ा हो गया।

औपनिवेशिक घुसपैठ और व्यापारियों, महाजनों व लगान वसूलने वालों के तिहरे शासन ने पूरे आदिवासी समाज की लय और ताल ही तोड़ दी। हालांकि यह हमला कहीं बहुत तगड़ा रहा, तो कहीं थोड़ा कम। लेकिन इसने उनको बुरी तरह झकझोरा। यहाँ तक कि उनके कबीलाई सरदार और मुखिया भी शोषण से बच नहीं सके। इसलिए आम आदिवासी के साथ उनके सरदार और मुखिया भी विदेशियों को खदेड़ने के लिए एकजुट हुए। दरअसल आदिवासियों के विद्रोहों में उनके जातीय हित ही बुनियादी कारण रहे। उन्होंने वर्ग के आधार पर नहीं, बल्कि जातीय आधार पर और आदिवासी पहचान जैसे संथाल, कोल, मुंडा आदि के रूप में अपने आपको संगठित किया। उनकी एकजुटता की दाद देनी पड़ेगी। उन्होंने कभी भी दूसरे आदिवासियों पर हमला नहीं किया।

एक खास बात और थी कि सभी बाहरी लोगों को वे दुश्मन नहीं मानते थे। बाहर से उनके इलाके में आकर बसे ऐसे लोगों पर आमतौर पर वे हमला नहीं करते थे, जो गरीब होते थे और आदिवासी गांवों की अर्थव्यवस्था में जिनकी भूमिका सहायक थी या जिन लोगों ने आदिवासियों से गहरे सामाजिक रिश्ते बना लिए थे। इन लोगों में ग्वाले, लुहार, बढ़ई, कुम्हार, जुलाहे, धोबी, नाई, ढोलची, बंधुआ मजदूर और पैसे वाले बाहरी लोगों के यहां काम करने वाले घरेलू नौकर शामिल थे। ये लोग न सिर्फ आदिवासियों के हमले से बचे रहे, बल्कि कई मौकों पर तो ये आदिवासियों के साथ मिलकर लड़े भी। ऐसे मौकों पर जाति ने नहीं, बल्कि वर्ग ने उनको एक–दूसरे के साथ जोड़ा और अंग्रेजों के खिलाफ गोलबंद किया।

***शोधकर्त्री समाज विज्ञान संकाय (इतिहास) मगध विश्वविद्यालय, बोधगया**

आदिवासी इस हद तक संगठित थे कि कई बार कई आदिवासी क्षेत्र में एक ही समय पर बाहरी लोगों के खिलाफ हिंसक संघर्ष भड़का। इसमें उन्हें सफलता भी मिली और कई गांवों से बाहरी लोगों को खदेड़ दिया गया और अपनी जमीन पर फिर उनका कब्जा हो गया। इसका नतीजा यह हुआ कि औपनिवेशिक शासन के अधिकारियों से भी उनका संघर्ष शुरू हुआ और इस तरह आदिवासियों की लड़ाई सशस्त्र विद्रोह की शक्ल अख़्तियार करती गई।

ऐसे मौकों पर कई बार आदिवासियों के बीच ओझाओं जैसे धार्मिक और चमत्कारवादी नेता भी उभरे, जिन्होंने उन्हें आश्वस्त किया कि ईश्वर उनके कष्टों को दूर करेगा और बाहरी लोगों के शिकंजे से उनको मुक्ति दिलाएगा। इन धार्मिक नेताओं ने इस तरह के विश्वास रोपने के बाद आदिवासियों का आह्वान किया कि विदेशी अधिकारियों के ख़िलाफ विद्रोह में वे सब एकजुट हों। इनमें से ज्यादातर नेताओं का दावा था कि ईश्वर उनके साथ है और उन पर ईश्वर की विशेष कृपा है। वे अक्सर यह दावा भी करते थे कि उनके पास जादुई ताकत भी है, जिससे वे दुश्मन की गोलियों को भी बेअसर कर सकते हैं। इससे आदिवासियों में आशा और विश्वास की ऐसी लहर फैली कि वे आख़िरी सांस तक अपने नेता के साथ लड़ने को तैयार हो गए।

ब्रिटिश सेना और आदिवासियों के बीच सशस्त्र संघर्ष पूरी तरह दो गैर–बराबर पक्षों के बीच का संघर्ष था। एक तरफ तो आधुनिकतम हथियारों से लैस फ़ौज और दूसरी तरफ पत्थर, आरी, भाले और तीर–धनुष लिए जूझते बहादुर आदिवासी पुरुष और औरतें, जिन्हें यह विश्वास था कि उनके नेता के पास ईश्वरीय ताक़त है। ग़ैर–बराबरी के इस युद्ध में लाखों की संख्या में आदिवासी मारे गए।

संथालों का विद्रोह–आदिवासियों के विद्रोहों में संथालों का विद्रोह सबसे जबरदस्त था। भागलपुर से राजमहल के बीच का क्षेत्र दामन–ए–कोह के नाम से जाना जाता था। यह संथाल बहुल क्षेत्र था। यहाँ हजारों संथालों ने संगठित विद्रोह किया। विद्रोहियों ने गैर–आदिवासियों को भगाने, उनकी सत्ता समाप्त कर अपनी सत्ता स्थापित करने के लिए जोरदार संघर्ष छेड़ा। वे कौन से सामाजिक–आर्थिक कारण थे, जिनके चलते संथाल विद्रोही बने। इसका वर्णन उस समय के एक लेखक ने किया है, जो 'कलकत्ता रिव्यू' में छपा था जो इस प्रकार है।

''जमींदार, पुलिस, राजस्व विभाग और अदालतों ने संथालों पर बेइंतहा जुल्म ढाए। उनकी जमीन–जायदाद छीन ली। हर कदम पर संथालों को अपमानित किया जाता था और मारा–पीटा जाता था। संथालों को कर्ज देकर 50 से 500 फीसदी की दर से ब्याज वसूला जाता था। धनी और ताकतवर लोग, जब मन में आता था, मेहनतकश संथालों को उजाड़ देते थे। उनकी खड़ी फसलों पर हाथी

दौड़ा दिए जाते थे। यह अत्याचार आम बात हो गई थी। दिकू (गैर–आदिवासी) और सरकारी कर्मचारी भी संथालों की निगाह में अत्याचारी थे। ये लोग संथालों से बेगार कराते थे। चोरी करना, झूठ बोलना और शराब पीना इनकी आदत–सी बन गई थी।''

1854 के आते–आते आदिवासी कसमसाने लगे। आदिवासियों के मुखिया मजलिस और परगणित बैठकें करने लगे और तैयारी शुरू हो गई खुले विद्रोह की। जमींदारों और सूदखोरों को लूटने की इक्का–दुक्का घटनाएँ शुरू हुई। 30 जून 1855 को भगनीडीह में 400 आदिवासी गांवों में करीब छह हजार आदिवासी प्रतिनिधि इकट्ठे हुए और सभा की। एक स्वर से निर्णय लिया गया कि बाहरी लोगों को भगाने, विदेशियों का राज हमेशा के लिए खत्म कर सतयुग का राज–न्याय और धर्म पर अपना राज–स्थापित करने के लिए खुला विद्रोह किया जाए।

संथालों को विश्वास था कि भगवान उनके साथ है। विद्रोह आदिवासियों के दो प्रमुख नेता सीदो और कान्हू ने घोषणा की कि ठाकुरजी (भगवान) ने उन्हें निर्देश दिया है कि आजादी के लिए अब हथियार उठा लो। सीदो ने अधिकारियों से कहा, ''ठाकुरजी ने मुझे आदेश देते समय कहा कि यह देश साहबों का नहीं है। ठाकुरजी खुद हमारी तरफ से लड़ेंगे। इस तरह आप साहब लोग और सिपाही लोग खुद ठाकुरजी से लड़ोगे।''

इन आदिवासियों ने गांवों में जुलूस निकाले। ढोल और नगाड़े बजाते ये पुरुषों, महिलाओं से संघर्ष करने का आह्वान करते। इन्होंने सबको संघर्ष करने के लिए तैयार कर लिया। इनके नेता हाथी, घोड़े और पालकी पर चलते थे। बहुत जल्दी इन्होंने करीब 60 हजार हथियारबंद संथालों को इकट्ठा कर लिया। इसके अलावा कई हजार आदिवासियों को तैयार रहने के लिए कहा गया कि जब नगाड़ा बजे तो हथियार उठा लेना। विद्रोहियों ने महाजनों और जमींदारों पर हमला बोलना शुरू किया। उनके मकान जला डाले। पुलिस स्टेशन, रेलवे स्टेशन और डाक ढोने वाली गाड़ियों को जला दिया। लगभग उन सभी चीजों पर हमला किया, जो दिकू (गैर–आदिवासी) और उपनिवेशवादी सत्ता के शोषण के माध्यम थे।

आदिवासियों के संगठित विद्रोह से सरकार चौंकी और उसने इससे निपटने के लिए सेना का सहारा लिया। विद्रोहियों का सफाया करने के लिए एक मेजर जनरल के नेतृत्व में 10 टुकड़ियां भेजी गई। उपद्रवग्रस्त क्षेत्रों में मार्शल लॉ लागू किया गया और विद्रोही नेताओं को पकड़ने पर 10 हजार रूपये का इनाम घोषित किया गया।

सत्ता के अत्याचार और निरंकुशता ने विद्रोह को कुचल दिया। 15 हजार से अधिक संथाल मारे गए। इनके गांव–के–गांव उजाड़ दिए गए। अगस्त 1855 में सीदो पकड़ा गया और मार डाला गया। कान्हू फरवरी 1886 में पकड़ा गया।

राजमहल की पहाड़ियाँ संथालों के खून में लाल हो गई। एल.एस.एस.ओ. मुले ने संथालों के इस विद्रोह को मुठभेड़ की संज्ञा दी है और उनकी बहादुरी का वर्णन कुछ इन शब्दों में किया है।

संथालों ने अदम्य साहस दिखाया, असह्य यातना पर भी उफ तक नहीं किया और कभी आत्मसमर्पण नहीं किया। एक बार एक झोंपड़ी में 45 संथाल छिपे थे। सिपाही इन्हें घेरे हुए थे। सिपाही जब–जब गोली चलाते, ये संथाल तीर चलाते। जब उनके तीर चुक गए तो सिपाही झोंपड़ी में घुसे। झोंपड़ी में केवल एक बूढ़ा संथाल जिंदा था। एक सिपाही ने जब उससे आत्मसमर्पण करने को कहा तो वह बूढ़ा सिपाही पर टूट पड़ा और अपनी कुल्हाड़ी से सिपाही के टुकड़े–टुकड़े कर दिए।

कोल, रंपा और बिरसा मुंडा विद्रोह–छोटा नागपुर के कोल आदिवासियों का विद्रोह 1820 से 1836 तक चलता रहा। हजारों आदिवासियों को कत्ल करने के बाद ही ब्रिटिश शासन फिर यहां हो सका। आंध्र के तटवर्ती क्षेत्रों में रंपा पहाड़ी आदिवासियों ने 1879 में सरकार समर्थित मनसबदारों के भ्रष्टाचारों और नए जंगल कानून के खिलाफ विद्रोह किया। इस विद्रोह को दबाने के लिए भी सरकार ने सेना की मदद ली। पैदल और घुड़सवार सेना के दस्ते हजारों आदिवासियों के दमन में जुट गए और 1880 में विद्रोह को दबा दिया गया।

मुंडा आदिवासियों का विद्रोह 1899–1900 के बीच हुआ। इसका नेतृत्व किया बिरसा मुंडा ने। मुंडा जाति में सामूहिक खेती का प्रचलन था, लेकिन जागीरदारों, ठेकेदारों (लगान वसूलनेवालों), बनियों और सूदखोरों ने सामूहिक खेती की परंपरा पर हमला बोला। मुंडा सरदार 30 वर्ष तक सामूहिक खेती के लिए लड़ते रहे।

बिरसा का जन्म बंटाई की खेती करने वाले एक परिवार में 1874 में हुआ था। 1895 में बिरसा ने अपने आप को भगवान का दूत घोषित कर दिया। उसने कहा कि भगवान ने उसे गजब की ताकत दी है। हजारों आदिवासी उसे देखने–सुनने आने लगे। बिरसा नेता बन गया था और धार्मिक आंदोलन जल्द ही खेतिहर मजदूरों के राजनीतिक आंदोलन में बदल गया। बिरसा गांव–गांव घूमकर धार्मिक और राजनीतिक आधार पर आदिवासियों को हथियारबंद करने लगा। 1899 में क्रिसमस की पूर्व संध्या पर बिरसा में मुंडा जाति का शासन स्थापित करने के लिए विद्रोह का ऐलान किया। उसने इसके लिए ''ठेकेदारों, जागीरदारों, राजाओं, हाकिमों और ईसाइयों को कत्ल करने का'' भी आह्वान किया। उसने कहा कलयुग को खत्म कर सतयुग लाएंगे और घोषणा की कि ''दिकुओं (गैर–आदिवासियों) से अब हमारी लड़ाई होगी और उनके खून से जमीन इस तरह लाल होगी जैसे लाल झंडा'' मगर उसने यह भी हिदायत दी कि गरीब गैर–आदिवासियों पर हाथ न उठाया जाए।

लगभग छह हजार मुंडा तीर–तलवार, कुल्हाड़ी व अन्य हथियारों से लैस होकर बिरसा के साथ हो लिए। लेकिन बिरसा फरवरी 1900 के शुरू में गिरतार कर लिया गया और जून में वह जेल में ही मर गया। विद्रोह तो कुचल दिया गया, पर बिरसा अमर हो गया।

संदर्भ सूची–

1. डॉ0 जियाउद्दीन अहमदः बिहार के आदिवासी
2. A.R. Desai, editor, Peasant Struggle in India, Delhi, 1979-\
3. S.B. Chaudhuru, Civil Disturbances during the British Rule in India, Calcutta, 1955
4. Ranajit Guha, Elementary Aspects of Peasant Insurgency in Colonial India, Delhi, 1983
5. Blair B. Kling, The Blue Mutiny- The Indigo Disturbances in Bengal, 1859-1862, Philadelphia, 1966
6. Kalyan Kumar Sen Gupta, Patna Disturbances and the Politics of Rent 1873-1885, New Delhi, 1974
7. Ravinder Kumar, Western India in the Nineteenth Century, London, 1968
8. Stephen Fuchs, Rebellious Prophets: A Study of Messianic Movements in India Religious, Bombay, 1965.